© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS | Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN : 2454 – 308X | Volume : 03 , Issue : 06 | July - September 2017

करुण रस की विशेषताएँ , उसकी मर्मस्पर्शिता और श्रृंगार रस पर करुण रस का प्रभाव

सीमा, रिसर्च स्कॉलर

परिचय : करुणरस द्रवीभूत हृदय का वह सरस-प्रवाह है, जिससे सहृदयता क्यारी सिंचित, मानवता फुलवारी विकसित और लोकहित का हरा-भरा उद्यान सुसज्जित होता है। उसमें दयालुता प्रतिफलित दृष्टिगत होती है, और भावुकता-विभूति-भरित। इसीलिए भावुक-प्रवर-भवभूति की भावमयी लेखनी यह लिख जाती है-

एको रस: करुण एव निमित्त भेदाद्।

भिन्न: पृथक् पृथिगिवाश्रयते विवर्तान्॥

आवर्तबुद्बुदतरंग मयान् विकारान्।

अम्भो यथा सलिलमेवहि तत् समस्तम्॥

एक करुणरस ही निमित्त भेद से शृंगारादि रसों के रूप में पृथक्-पृथक् प्रतीत होता है। शृंगारादि रस करुणरस के ही विवर्त्त हैं, जैसे भँवर, बुलबुले और तरंग जल के ही विकार हैं। वास्तव में ए सब जल ही हैं, केवल नाम मात्र की भिन्नता है। ऐसा ही सम्बन्ध करुणरस और शृंगारादि रसों का है।

सम्भव है यह विचार सर्व-सम्मत न हो, उक्त उक्ति में अत्युक्ति दिखलाई पड़े, किन्तु करुणरस की सत्ता की व्यापकता और महत्ता निर्विवाद है। रसों में श्रृंगाररस और वीररस को प्रधानता दी गयी है। श्रृंगार रस को रसराज कहा जाता है। उसके दो अंश हैं, संयोग श्रृंगार और वियोग श्रृंगार अथवा विप्रलम्भ श्रृंगार/वियोग श्रृंगार में रति की ही प्रधानता है, अतएव प्राधन्य उसी को दिया गया है। दूसरी बात यह कि आचार्य भरत का यह कथन है-

"यत्किञ्चिल्लोके शुचि मेध्यमुज्ज्वलं दर्शनीयं वा तत्सर्वं शृंगारेणोपमीयते (उपयुज्यते च)"।

"लोक में जो कुछ मेध्य, उज्ज्वल और दर्शनीय है, उन सबका वर्णन श्रृंगार रस के अन्तर्गत है।"

श्रीमान् विद्या वाचस्पति पण्डित शालिग्राम शास्त्री इसकी यह व्याख्या करते हैं-

"छओ ऋतुओं का वर्णन, सूर्य और चन्द्रमा का वर्णन, उदय और अस्त, जलविहार, वन-विहार, प्रभात, रात्रि-क्रीड़ा, चन्दनादि लेपन, भूषण धारण तथा जो कुछ स्वच्छ, उज्ज्वल वस्तु हैं, उन सबका वर्णन श्रृंगार रस में होता है"।

ऐसी अवस्था में श्रृंगार रस की रसराजता अप्रकट नहीं, परन्तु साथ ही यह भी कहा गया है-

'न बिना विप्रलम्भेन संभोग: पुष्टिमश्नुते'।

'बिना वियोग के सम्भोग श्रृंगार परिपुष्ट नहीं हो पाता'।

'यत्र तु रति: प्रकृष्टा नाभीष्टमुपैति विप्रलम्भोऽसौ'।

'जहाँ अनुराग तो अति उत्कट है, परन्तु प्रिय समागम नहीं होता उसे विप्रलम्भ कहते हैं।'

'स च पूर्वराग मान प्रवास करुणात्मकश्चतुर्धा स्यात्'।

'वह विप्रलम्भ 1. पूर्वराग, 2. मान, 3. प्रवास और 4. करुण-इन भेदों से चार प्रकार का होता है'।

इन पंक्तियों के पढ़ने के उपरान्त यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रृंगार रस पर करुण रस का कितना अधिकार है और वह उसमें कितना व्याप्त है। यह कहना कि बिना विप्रलम्भ के संभोग की पुष्टि नहीं होती, यथार्थ है और अक्षरश: सत्य है। प्रज्ञाचक्षु श्रृंगार साहित्य के प्रधान आचार्य श्रीयुत् सूरदासजी की लेखनी ने श्रृंगार रस लिखने में जो कमाल दिखलाया है, जो रस की सरिता बहाई है उसकी जितनी प्रशंसा की जाए, थोड़ी है। किन्तु संभोग श्रृंगार से विप्रलम्भ श्रृंगार लिखने में ही उनकी प्रतिभा ने अपनी हृदय-ग्राहिणी-शक्ति का विशेष परिचय दिया है। उध्दव सन्देश सम्बन्धिनी कविताएँ, श्रीमती राधिका और गोपबालाओं के कथनोपकथन से सम्पर्क रखनेवाली मार्मिक रचनाएँ, कितनी प्रभावमयी और सरस हैं, कितनी भावुकतामयी और मर्मस्पर्शिनी हैं। उनमें कितनी मिठास, कितना रस, कैसी अलौकिक व्यंजना और कैसा सुधास्रवण है, इसको सहृदय पाठक ही समझ सकता है। वास्तव बात यह है कि सूरसागर के अनूठे रत्न इन्हीं पंक्तियों में भरे पड़े हैं। नवरस सिध्द महाकवि गोस्वामी तुलसीदास जी के कोटिश: जन-पूजित रामचरितमानस में जहाँ-जहाँ उनकी हृत्तांत्री के तार विप्रलम्भ कर से झङ्कृत हुए हैं, वहाँ-वहाँ की अवधी भाषा का हृदय-द्रावक राग कितना रस-वर्षणकारी और विमुग्धकर है, कितना रोचक, तल्लीनतामय और भावुकजन विमोहक है, उसको बतलाने में जड़ लेखनी असमर्थ है। रामचरितमानस के वे अंश जो अन्तस्तल में रस की धरा बहा देते हैं, जिनमें उच्च कोटि का कवि-कर्म पाया जाता है, जिनकी व्यंजना में भाव-व्यंजना की पराकाष्ठा होती है, उसके विप्रलम्भ श्रृंगार सम्बन्धी अंश भी वैसे ही हैं। मलिक मुहम्मद जायसी का 'पद्मावत' भी हिन्दी-साहित्य का एक उल्लेखनीय ग्रन्थ है, उसमें भी पद्मावती का पूर्वानुराग और नागमती का विरह-वर्णन ही अधिकतर हृदयग्राही और मर्मस्पर्शी है। प्रज्ञाचक्षु सूरदास और महात्मा गोस्वामी तुलसीदास जैसे महाकवि हिन्दी-संसार में अब तक उत्पन्न नहीं हुए। इन महानुभावों की लेखनी में अलौकिक और असाधारण क्षमता थी। इन लोगों की लेखन-कला से विप्रलम्भ श्रृंगार को जो गौरव प्राप्त हुआ है, उससे सिध्द है कि श्रृंगार रस पर विप्रलम्भ श्रृंगार का कितना अधिकार है। श्रृंगार रस के बाद वीर रस को ही प्रधानता दी जाती है, किन्तु इस रस में भी करुण रस की विभूतियाँ दृष्टिगत होती हैं। वीर रस की इतिश्री युध्द-वीर और धर्म-वीर में ही नहीं हो जाती, उसके अंग दया-वीर और दान-वीर भी हैं, जो अधिकतर करुणार्द-हृदय द्वारा संचालित होते रहते हैं। श्मशान का कारुणिक-दृश्य निर्वेद का ही

सृजन नहीं करता है, भयानक और बीभत्स रस का प्रभाव भी हृदय पर डालता है। वसुंधरा के पाप-भार से पीड़ित होने पर किसी विभूतिमत् सत्तव का धरा में अवतीर्ण होना क्या करुण रस का आह्वान नहीं है? क्या ग्राह से गज-मोक्ष सम्बन्धिनी क्रिया में कारुणिकता नहीं पाई जाती और क्या यह अद्‌भुत रस के कार्य-कलाप का निदर्शन नहीं है? कान्त-कवितावली के आचार्य जयदेवजी ने जिन बुध्ददेव को 'कारुण्यमातन्वते' वाक्य द्वारा स्मरण किया है, उनका वसुंधरा की एक तृतीयांश जनता के हृदय पर केवल करुणा के बल से अधिकार कर लेना क्या अतीव-अद्‌भुत कार्य नहीं है? एक बहुत बड़ा सम्राट भी आज तक इतनी बड़ी जनता पर अस्त्र शस्त्र अथवा पराक्रम बल से अधिकार नहीं कर सका। अतएव बुध्ददेव के कारुणिक-कार्य-कलाप में अद्‌भुत रस का कैसा समावेश है, इसको प्रत्येक सहृदय व्यक्ति समझ सकता है। रही रौद्र रस की बात, उसके विषय में यह कहना है कि क्या उपहास-मूलक हास्य उस रौद्र-भाव का सृजनकर्त्ता नहीं है, जिसकी संचालिका कारुणिक खिन्नता होती है। आततताइयों, अत्याचारियों, देश जाति के द्रोहियों, लोकहित-कंटकों की विपन्न दशा क्या मानवता के अनुरागियों, संसार के शान्ति सुख के कामुकों और लोकोपकार निरतों को हर्षित नहीं करती, और क्या उनके उत्फुल्ल आननों पर स्मित की रेखा नहीं खींचती, और क्या यह करुण रस का विकास हास्य-रस में नहीं है? अब तक जो कुछ कहा गया उससे भवभूति प्रतिभा प्रसूत श्लोक की वास्तवता मान्य और करुण रस की महनीय महत्ता पूर्णतया स्वीकृत हो जाती है।

यह विचार-परम्परा भी करुण रस को विशेष गौरवित बनाती है, कि कविता का आरम्भ पहले पहल इसी रस के द्वारा हुआ है। कवि-कुल-गुरु कालिदास लिखते हैं-

'निषादविध्दाण्डजदर्शनोत्थ: श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोक:।

निषाद के बाण से बिध्द पक्षी के दर्शन से जिसका (महर्षि वाल्मीक का) शोक श्लोक में परिणत हो गया। वह श्लोक यह है-

मा निषाद प्रतिष्ठात्वमगम: शाश्वती: समा।

यत्क्रौंच मिथुनादेकमबधी: काममोहितम्॥

हे निषाद! तू किसी काल में प्रतिष्ठा न पा सकेगा। तू ने व्यर्थ काममोहित दो क्रौंचों में से एक को मार डाला।

वाल्मीकि-रामायण में लिखा है कि यही पहला आदिम पद्य है, जिसके आधार से उसकी रचना हुई। वाल्मीकि रामायण ही संस्कृत का पहला पद्य-ग्रंथ है। और उसका आधार करुण रस का उक्त श्लोक ही है। अतएव यह माना जाता है कि कविता का आरम्भ करुण रस से ही हुआ है।

तो भी संस्कृत श्लोक के भाव का प्रतिपादन एक अन्यदेशीय प्राचीन भाषा द्वारा हो जाने से इस विचार की पुष्टि पूर्णतया हो जाती है कि करुण रस द्वारा ही पहले पहल कविता देवी का आविर्भाव मानव-हृदय में हुआ है। और यह एक सत्य का अद्‌भुत विकास है।

करुण रस की विशेषताओं और उसकी मर्मस्पर्शिता की ओर मेरा चित्त सदा आकर्षित रहा, इसका ही परिणाम 'प्रिय-प्रवास' का आविर्भाव है। 'प्रिय-प्रवास'की रचना के उपरान्त मेरी इच्छा 'वैदेही-वनवास' प्रणयन की हुई। उसकी भूमिका में मैंने यह बात लिख भी दी थी। परन्तु चौबीस वर्ष तक मैं हिन्दी-देवी की यह सेवा न कर सका। कामना-कलिका इतने दिनों के बाद ही विकसित हुई। कारण यह था कि उन दिनों कुछ ऐसे विचार सामने आए, जिनसे मेरी प्रवृत्ति दूसरे विषयों में ही लग गई। उन दिनों आजमगढ़ में मुशायरों की धूम थी। बन्दोबस्त वहाँ हो रहा था। अहलकारों की भरमार थी। उनका अधिकांश उर्दू-प्रेमी था। प्राय: हिन्दी भाषा पर आवाज कसा जाता, उसकी खिल्ली उड़ाई जाती, कहा जाता हिन्दी-वालों को बोलचाल की फड़कती भाषा लिखना ही नहीं आता। वे मुहावरे लिख ही नहीं सकते। इन बातों से मेरा हृदय चोट खाता था, कभी-कभी मैं तिलमिला उठता था। उर्दू-संसार के एक प्रतिष्ठित मौलवी साहब जो मेरे मित्र थे और आजमगढ़ के ही रहने वाले थे, जब मिलते, इस विषय में हिन्दी की कुत्सा करते, व्यंग्य बोलते। अतएव मेरी सहिष्णुता की भी हद हो गई। मैंने बोलचाल की मुहावरेदार भाषा में हिन्दी-कविता करने के लिए कमर कसी। इसमें पाँच-सात बरस लग गये और 'बोल-चाल' एवं 'चुभते चौपदे' और 'चोखे चौपदे' नामक ग्रंथों की रचना मैंने की। जब इधर से छुट्टी हुई, मेरा जी फिर 'वैहेदी-वनवास' की ओर गया। परन्तु इस समय एक दूसरी धुन सिर पर सवार हो गई। इन दिनों मैं काशी विश्वविद्यालय में पहुँचा गया था। शिक्षा के समय योग्य विद्यार्थी-'समुदाय' ईश्वर अथच संसार-सम्बन्धी अनेक विषय उपस्थित करता रहता था। उनमें कितने श्रध्दालु होते, कितने सामयिकता के रंग में रँगे शास्त्रीय और पौराणिक विषयों पर तरह-तरह के तर्क-वितर्क करते। मैं कक्षा में तो यथाशक्ति जो उत्तर उचित समझता, दे देता। परन्तु इस संघर्ष से मेरे हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि इन विषयों पर कोई पद्य-ग्रंथ क्यों न लिख दिया जाए। निदान इस विचार को मैंने कार्य में परिणत किया और सामयिकता पर दृष्टि रखकर मैंने एक विशाल-ग्रंथ लिखा। परन्तु इस ग्रंथ के लिखने में एक युग से भी अधिक समय लग गया। मैंने इस ग्रंथ का नाम 'पारिजात' रखा। इसके उपरान्त 'वैहेदी-वनवास' की ओर फिर दृष्टि फिरी। परमात्मा के अनुग्रह से इस कार्य की भी पूर्ति हुई। आज 'वैदेही-वनवास' लिखा जाकर सहृदय विद्वज्जनों और हिन्दी-संसार के सामने उपस्थित है। (महाराज रामचन्द्र मर्यादा पुरुषोत्तम, लोकोत्तर-चरित और आदर्श नरेन्द्र अथच महिपाल हैं, श्रीमती जनक-नन्दिनी सती-शिरोमणि और लोक-पूज्या आर्य-बाला हैं। इनका आदर्श, आर्य-संस्कृति का सर्वस्व है, मानवता की महनीय विभूति है, और है स्वर्गीय-सम्पत्ति-सम्पन्न।) इसलिए इस ग्रंथ में इसी रूप में इसका निरूपण हुआ है। सामयिकता पर दृष्टि रखकर इस ग्रंथ की रचना हुई है, अतएव इसे बोधगम्य और बुध्दिसंगत बनाने की चेष्टा की गयी है। इसमें असम्भव घटनाओं और व्यापारों का वर्णन नहीं मिलेगा। मनुष्य अल्पज्ञ है, उसकी बुध्दि और प्रतिभा ही क्या? उसका विवेक ही क्या? उसकी सूझ ही कितनी, फिर मुझ ऐसे विद्या-विहीन और अल्पमति की। अतएव प्रार्थना है कि मेरी भ्रान्तियों और दोषों पर दृष्टिपात न कर विद्वज्जन अथच महज्जन गुण-ग्रहण की ही चेष्टा करेंगे। यदि कोई उचित सम्मति दी जाएगी तो वह शिरसाधार्य होगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि

1) http://vle.du.ac.in/mod/book/view.php?id=10284&chapterid=17287
2) आदिकालीन और भक्तिकालीन काव्य
3) http://www.hindivishwa.org/facultyInfo.aspx?empno=1072
4) http://www.bharatdarshan.co.nz/author-collection.html